प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ उच्च न्यायालय बिलासपुर

एम.सी.सी क्रमांक 183/2005

छत्तीसगढ राज्य विधिज्ञ परिषद

विरुद्ध

कुमारी आशा लता सोनी

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश हेतु नियत: दिनांक 15 सितम्बर, 2006

हस्ताक्षर /–

एल.सी.भादू

न्यायाधीश

छत्तीसगढ उच्च न्यायालय बिलासपुर

एम.सी.सी नंबर 183/2005

छत्तीसगढ राज्य विधिज्ञ परिषद

विरुद्ध

कुमारी आशा लता सोनी

आवेदक की ओर से श्री मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता, सह श्री एस.आर.जे. जायसवाल, अधिवक्ता उपस्थित ।

अनावेदिका की ओर से श्री आर.एम.सोलापुरकर अधिवक्ता उपस्थित।

WebCopy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

आदेश

(दिनांक 15 सितंबर 2006 को पारित)

एस.सी. भादू न्यायाधीश

1- इस एमसीसी द्वारा आवेदक ने इस न्यायालय द्वारा दाखिल रिट याचिका क्रमांक 859/2001 में पारित आदेश दिनांक 26–7–2005 के पुर्नविलोकन की मांग की है।

2- इस याचिका के निपटारे के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि अनावेदिका ने शासकीय डी.के. महाविद्यालय बलौदा बाजार से तीन वर्षीय एल.एल.बी. डिग्री पाठ्यक्रम उत्तीर्ण की है परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात अनावेदिका ने विधि व्यवसाय करने के लिए अधिवक्ता के रूप में नामांकन हेतु आवेदक के कार्यालय में आवेदन प्रस्तुत किया परंतु आवेदक ने अनावेदिका का नामांकन करने के स्थान पर दिनांक 06–10–1998 तथा 20–01–2000 को पत्र प्रेषित किए जिनके माध्यम से अनावेदिका का अधिवक्ता के रूप में नामांकन हेतु आवेदन यह कहकर

अस्वीकार कर दिया गया कि उन्होंने नियमित अभ्यर्थी के रूप में डिग्री पाठ्यक्रम उत्तीर्ण नहीं किया है। उक्त पत्रों को अनावेदिका द्वारा इस न्यायालय के समक्ष उपर्युक्त रिट याचिका में चुनौती दी गई थी। रिट याचिका में उल्लिखित अविवादित तथ्यों के अनुसार अनावेदिका को प्रथम वर्ष एल.एल.बी. पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त नहीं हो सका था। यद्यपि उन्हें प्रथम वर्ष एल.एल.बी. पाठ्यक्रम की कक्षाओं में उपस्थित होने की अनुमति दी गई और सत्र के अंत में उन्होंने उक्त परीक्षा में भाग लिया तथा प्रथम वर्ष की एल.एल.बी. परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात उन्हें द्वितीय एवं तृतीय वर्ष के एल.एल.बी. पाठ्यक्रम में नियमित छात्रा के रूप में प्रवेश प्रदान किया गया और अंततः उन्होंने तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम उत्तीर्ण कर डिग्री प्राप्त की। उक्त डिग्री में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि अनावेदिका ने तीन वर्षीय एल.एल.बी. डिग्री पाठ्यक्रम अमहाविदयालयीन अथवा स्वाध्यायी छात्रा के रूप में उत्तीर्ण की है याचिका के साथ अनावेदिका ने शासकीय डी.के. महाविद्यालय बलौदा बाजार के प्राचार्य द्वारा जारी दिनांक 02–06–1999 का एक प्रमाण पत्र भी संलग्न किया था जिसमें प्राचार्य ने यह प्रमाणित किया कि अनावेदिका ने नियमित कक्षाओं में उपस्थित होकर प्रथम वर्ष की एल.एल.बी. परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इस आधार पर न्यायालय ने अधिवक्ता अधिनियम 1961 की धारा 24 के प्रावधान सहपठित बार काउसिंल आफ इंडिया रूल्स के (खण्ड –बी) के नियम 1(1)(ग) यह निर्णय दिया कि याचिका स्वीकार की जाती है यह मानते हुए कि अनावेदिका ने अधिवक्ता अधिनियम 1961 की धारा 24 तथा बार काउसिंल आफ इंडिया नियमों के नियम 1(1)(ग) (खण्ड –बी) में वर्णित सभी शर्तों को पूर्ण कर लिया है। अब छत्तीसगढ़ विधिज्ञ परिषद ने उक्त आदेश का पुर्नविलोकन की मांग इस आधार पर की है कि प्राचार्य ने दिनांक 30 जुलाई 2005 के अपने पत्र अनुलग्नक –अ/1 एवं अ/2 के माध्यम से विधिज्ञ परिषद को सूचित किया है कि वर्ष 1994–95 में अनावेदिका को नियमित कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई थी क्योंकि अभिलेखों में ऐसा कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह प्रमाणित हो कि उन्होंने नियमित रूप से कक्षाओं में उपस्थिति दर्ज करायी थी।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3- न्यायालय द्वारा पारित निर्णय या आदेश की पुर्नविलोकन से संबंधित व्यवहार प्रक्रिया संहिता 1908 के सुसंगत प्रावधान धारा 114 तथा आदेश 47 नियम 1 में निहित हैं। व्यवहार प्रक्रिया संहिता की धारा 114 में निम्नलिखित प्रावधान किया गया है:–

114 पुर्नविलोकन :–पूर्वोक्त के अधीन रहते हुए कोई व्यक्ति जो :–

क) किसी ऐसे डिक्री का आदेश से जिसकी इस संहिता द्वारा अपील अनुज्ञात है किन्तु जिसकी कोई अपील नहीं की गई है ,

ख) किसी ऐसे डिक्री या आदेश से जिसकी इस संहिता द्वारा अपील अनुज्ञात नहीं है, अथवा

ग) ऐसे विनिश्चय से जो लघुवाद न्यायालय के निर्देश पर किया गया है ,

अपने को व्यथित मानता है वह डिक्री पारित करने वाले या आदेश करने वाले न्यायालय से निर्णय के पुर्नविलोकन के लिये आवेदन कर सकेगा और न्यायालय उस पर ऐसा आदेश कर सकेगा जो वह ठीक समझे।

व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 के प्रावधान इस प्रकार हैं: –

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

1.निर्देश के पुर्नविलोकन के लिये आवेदन (1) जो कोई व्यक्ति –

क) किसी ऐसी डिक्री या अपील से जिसकी अपील अनुज्ञात है किन्तु जिसकी कोई अपील नहीं की गयी है,

ख) किसी ऐसी डिक्री या आदेश से जिसकी अपील अनुज्ञात नहीं है , अथवा

ग) लघुवाद न्यायालय द्वारा किये गए निर्देश पर विनिश्चय से ,

अपने को व्यथित समझता है और जो ऐसी नई और महत्त्वपूर्ण बात या साक्ष्य के पता चलने से जो सम्यक् तत्परता के प्रयोग के पश्चात् उस समय जब डिक्री पारित की गई थी या आदेश किया गया था उसके ज्ञान में नहीं था या उसके द्वारा पेश नहीं किया जा सकता था या किसी भूल या गलती के कारण जो अभिलेख के देखने से ही प्रकट होती हो या किसी अन्य पर्याप्त कारण से वह चाहता है कि उसके विरुद्ध पारित डिक्री या किये गए आदेश का पुनर्विलोकन किया जाए वह उस न्यायालय से निर्णय के पुनर्विलोकन के लिये आवेदन कर सकेगा जिसने वह डिक्री पारित की थी या वह आदेश किया था।

(2) वह पक्षकार जो डिक्री या आदेश की अपील नहीं कर रहा है निर्णय के पुनर्विलोकन के लिये आवेदन इस बात के होते हुए भी किसी अन्य पक्षकार द्वारा की गई अपील लंबित है वहाँ के सिवाय कर सकेगा जहाँ ऐसी अपील का आधार आवेदक और अपीलार्थी दोनों के बीच सामान्य है या जहाँ प्रत्यर्थी होते हुए

वह अपील न्यायालय में वह मामला उपस्थित कर सकता है जिसके आधार पर वह पुनर्विलोकन के लिये आवेदन करता है।

स्पष्टीकरण – यह तथ्य कि किसी विधि– प्रश्न का विनिश्चय जिस पर न्यायालय का निर्णय आधारित है किसी अन्य मामले में वरिष्ठ न्यायालय के पश्चातवर्ती विनिश्चय द्वारा उलट दिया गया है या उपांतरित कर दिया गया है उस निर्णय के पुनर्विलोकन के लिये आधार नहीं होगा।

अतः व्यवहार प्रक्रिया संहिता. की धारा 114 के उपर्युक्त प्रावधानों के अनुसार यदि उसमें निर्दिष्ट पूर्व शर्तें पूर्ण होती हैं तो न्यायालय को अपने आदेश के पुर्नविलोकन करने का अधिकार प्राप्त है और इस धारा में न्यायालय की पुनर्विलोकन संबंधी शक्ति पर केवल वही सीमाएँ लगाई गई हैं जो स्वयं धारा 114 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित हैं। इस धारा के अंतर्गत न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार प्राप्त है जैसा वह उपयुक्त समझे।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

यद्यपि सिविल प्रक्रिया संहिता की आदेश 47 नियम 1 के अंतर्गत पुर्नविलोकन आवेदन दायर करने का प्रावधान है। ऐसी पुर्नविलोकन आवेदन केवल निम्नलिखित परिस्थितियों में पोषणीय होगा— (i) जब कोई नई और महत्वपूर्ण बात या साक्ष्य ज्ञात हो जो यथोचित परिश्रम के पश्चात भी याचिकाकर्ता की जानकारी में नहीं थी या जिसे वह डिक्री पारित होने अथवा आदेश दिए जाने के समय प्रस्तुत नहीं कर सका (ii)अभिलेख पर स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष कोई त्रुटि या भूल होने के कारण तथा (iii) किसी अन्य यथोचित कारण के आधार पर।

इस प्रकार पुर्नविलोकन याचिका पर विचार करने के लिए एक पूर्व शर्त (पुरोभाव्य शर्त) यह है कि सर्वप्रथम धारा 114 को आदेश 47 नियम 1 के साथ पढ़ते हुए उसमें उल्लिखित शर्तों की पूर्ति की जानी चाहिए। इसके उपरांत वह व्यक्ति जो निर्णय अथवा आदेश का पुर्नविलोकन चाहता है उसे यह सिद्ध करना होगा कि आदेश या निर्णय पारित होने के बाद कोई नई और महत्वपूर्ण बात अथवा साक्ष्य उसके संज्ञान में आया है जो आदेश पारित होने तक उसकी जानकारी में नहीं था और जिसे वह यथोचित परिश्रम करने के बाद भी जान नहीं सका या प्रस्तुत नहीं कर सका अथवा यह कि आदेश में कोई स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष त्रुटि या भूल है अथवा पुनर्विचार के लिए कोई अन्य यथोचित कारण है।

4- कई प्रकरणो में उपर्युक्त व्यवहार प्रक्रिया संहिता के प्रावधान निर्वचन हेतु माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आए है और और ऐसा ही एक प्रकरण **बोर्ड आफ कन्ट्रोल फार क्रिकेट इंडिया एवं अन्य विरुद्ध नेताजी क्रिकेट क्लब एवं अन्य में प्रकाशित 2005 ए.आई.आर एस.सी.डब्ल्यू 230 प्रकरण** मे जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपर्युक्त प्रावधानों का निर्वचन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि —

" व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 47, नियम 1 के अंतर्गत पुर्नविलोकन आवेदन दाखिल करने का प्रावधान है। ऐसा पुर्नविलोकन आवेदन केवल तब ही पोषणीय नहीं होता जब कोई नई और महत्वपूर्ण साक्ष्य का पता चला हो या अभिलेख पर कोई स्पष्ट त्रुटि विद्यमान हो, बल्कि यह भी तब पोषणीय हो सकता है जब किसी भूलवश या किसी अन्य यथोचित कारण से पुर्नविलोकन आवश्यक हो। अतः न्यायालय की ओर से हुई कोई भूल, जिसमें वचन के स्वरूप में भूल भी शामिल होगी, आदेश के पुनर्विलोकन की आवश्यकता उत्पन्न कर सकती है। पुनर्विलोकन के लिए आवेदन भी पोषणीय होगा यदि इसके लिए पर्याप्त कारण मौजूद हो। पर्याप्त कारण क्या होगा, यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। संहिता के आदेश 47 नियम 1 में शब्द 'पर्याप्त कारण' इतने व्यापक हैं कि इसमें न्यायालय या यहां तक कि अधिवक्ता द्वारा तथ्य या विधि की गलत धारणा भी शामिल हो सकती है। 'सिद्धांत "एक्टस क्यूरी नेमिनेम ग्रेवाबिट" (न्यायालय के कार्य से किसी को हानि नहीं होती) को लागू करने के माध्यम से पुनर्विलोकन के लिए आवेदन की आवश्यकता हो सकती है "

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि:–

"यह कहना भी उचित नहीं होगा कि न्यायालय, जब वह अपनी पुनर्विलोकन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा हो, तो वह किसी भी स्थिति में घटित होने वाली पश्चातवर्ती घटना पर विचार नहीं कर सकता ऐसे प्रकरण में, जब न्यायालय बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए वचन की प्रकृति और अभिप्राय को समझने में और 29 सितंबर, 2004 को आयोजित बोर्ड की वार्षिक आम बैठक (एजीएम) में जो कुछ घटित हुआ, उसके साथ इसके संबंध को समझने में अपनी गलती स्वीकार करता है, तो न्यायालय अपनी गलती को सुधारने के उद्देश्य से बाद की घटना पर विचार कर सकता है।"

उच्चतम न्यायालय ने **राजेश डी. दरबार एवं अन्य बनाम नरसिंगराव कृष्णाजी कुलकर्णी एवं अन्य के प्रकरण में दिए गए निर्णय (जिसका उल्लेख {2003) 7 एससीसी 219** में है) का भी उल्लेख किया, जिसमें न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि:–

" पश्चातवर्ती घटनाओं के प्रभाव को अब स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है। पहला इनका प्रभाव याचिका की प्रकृति पर पड़ता है दूसरा यह अनुतोष के स्वरूप को प्रभावित करता है और तीसरा इनका महत्व इस बात में निहित होता है कि ये किसी मूल अधिकार को उत्पन्न कर सकते हैं अथवा उसको नष्ट कर सकते है जहां याचिका में प्रारंभ में मांगी गई अनुतोष की प्रकृति अप्रचलित या अनुपयोगी हो गया हो अथवा वाद दाखिल होने के पश्चात या यहां तक कि अपीलीय चरण के दौरान घटित विकासों के कारण कोई नई प्रकार की अनुतोष अधिक प्रभावी हो सकती हो तो यह उचित होगा कि अद्यतन तथ्यों के प्रकाश में अनुतोष को परिवर्तित संशोधित या पुनः स्वरूपित किया जाए"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

5. हरिदास दास बनाम उषा रानी बनिक (श्रीमती) एवं अन्य (2006) 4 सुप्रीम कोर्ट केसेस 78 में प्रकाशित प्रकरण में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है: –

"धारा 114 व्य.प्र.संहिता न्यायालय द्वारा अपेक्षित हस्तक्षेप के परिधि को भी स्पष्ट नहीं करती है। इस संबंध में मानदंड आदेश 47 व्य.प्रक्रिया संहिता में निर्धारित किए गए हैं जो पुनः सुनवाई की अनुमति केवल तभी देते हैं जब अभिलेखों के स्पष्ट स्वरूप पर कोई त्रुटि या भूल दृष्टिगोचर हो अथवा कोई अन्य पर्याप्त कारण उपस्थित हो इस नियम का पूर्व भाग उस स्थिति से संबंधित है जो आवेदक के कारण उत्पन्न होती है जबकि बाद वाला भाग ऐसे विधिक कृत्य(विधिक आधारित विचार) से संबंधित है जो स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण हो या जिस पर दो राय संभव न हों। इनमें से कोई भी स्थिति इस आधार पर विवाद की पुनः सुनवाई की कल्पना नहीं करती कि किसी पक्षकार ने मामले के सभी पक्षों को पर्याप्त रूप से उजागर नहीं किया या संभवतः उन्हें अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया होता अथवा न्यायालय के समक्ष बंधनकारी दृष्टांतों का उल्लेख किया होता और इस प्रकार अनुकूल निर्णय प्राप्त किया होता। यह बात आदेश 47 नियम 1 के निवर्चन से स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होती है।"

थुंगाभद्रा इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम आंध्र प्रदेश सरकार एआईआर 1964 एससी 1372 में प्रकाशित प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने उधृत किया है कि –

" एक मात्र गलत निर्णय और एक ऐसे निर्णय के बीच, जिसे 'स्पष्ट त्रुटि' से दूषित कहा जा सकता है, एक वास्तविक अंतर है, हालांकि यह हमेशा वर्णन करने योग्य न हो। पुनर्विलोकन किसी भी तरह से अपील का छद्म रूप नहीं है जिसके द्वारा किसी त्रुटिपूर्ण निर्णय पर फिर से सुनवाई की जाए और उसे सुधारा जाए, बल्कि यह केवल प्रत्यक्ष त्रुटि के लिए ही होता है... .. .. .. जहाँ बिना किसी विस्तृत तर्क के कोई त्रुटि की ओर इशारा कर सके और कह सके कि यहाँ विधि का एक सारवान बिंदु है जो साफ़ दिख रहा है, और इसके बारे में तर्कसंगत रूप से कोई दो राय नहीं हो सकतीं, वहाँ अभिलेख के चेहरे पर स्पष्ट त्रुटि का एक स्पष्ट प्रकरण बनता है।

प्रकरण ***मीरा भंजा बनाम निर्मला कुमारी चौधरी*** **ए आई आर 1995 एस.सी 455 में** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि –

" विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि पुनर्विलोकन की कार्यवाही अपील के रूप में नहीं होती है इसे आदेश 47 नियम 1, व्यवहार प्रक्रिया संहिता की परिधि और सीमा के भीतर ही सख्ती से सीमित रखा जाना चाहिए।" आदेश 47 नियम 1 के तहत न्यायालय की शक्तियों की सीमा के संबंध में, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आदेशों की पुनर्विलोकन करने की मांग करते हुए उच्च न्यायालय के पास उपलब्ध समान अधिकारिता से निपटने के दौरान, इस न्यायालय ने **अरिबम तुलेश्वर शर्मा बनाम अरिबम पिशाक शर्मा (एआईआर 1979 एससी 1047) में, चिनप्पा रेड्डी, जे**. के माध्यम से निम्नलिखित सुसंगत टिप्पणियाँ उधृत किया हैं:–

" यह सच है कि संविधान के अनुच्छेद 226 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उच्च न्यायालय को पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करने से रोकता हो, जो न्याय के दुरपयोग को रोकने या उसके द्वारा की गई गंभीर और स्पष्ट त्रुटियों को सुधारने के लिए सर्वांगीण अधिकारिता वाले प्रत्येक न्यायालय में निहित है। लेकिन, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग की निश्चित सीमाएँ हैं। पुनरीक्षण की शक्ति का प्रयोग नए और महत्वपूर्ण प्रकरण या सबूत की खोज पर किया जा सकता है, जो उचित सावधानी बरतने के बाद पुनर्विलोकन चाहने वाले व्यक्ति के संज्ञान में नहीं था या

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

आदेश पारित करते समय उसके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सका; इसका प्रयोग तब किया जा सकता है जब अभिलेख के अवलोकन से कुछ गलती या त्रुटि स्पष्ट हो; इसका प्रयोग किसी अनुरूप(सदृश) आधार पर भी किया जा सकता है। लेकिन, इसका प्रयोग इस आधार पर नहीं किया जा सकता कि निर्णय गुण–दोष के आधार पर गलत था। वह अपील न्यायालय का क्षेत्र होगा। पुनर्विलोकन की शक्ति को अपीलीय शक्ति के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए जो एक अपीलीय न्यायालय को अधीनस्थ न्यायालय द्वारा की गई सभी प्रकार की त्रुटियों को ठीक करने में सक्षम कर सकती है। ”

6. उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांत के प्रकाश में, यदि हम वर्तमान प्रकरण के तथ्यों की जांच करें जिनका उल्लेख इस आदेश के पूर्व भाग में किया गया है, तो मेरी सुविचारित राय है कि आवेदक व्य.प्र.सं के आदेश 47 नियम 1 के प्रावधानों के अनुसार दिनांक 26–7–2005 के आदेश के पुनर्विलोकन के लिए प्रकरण बनाने में सक्षम नहीं हो पाया है क्योंकि जब उस आदेश को पारित किया गया था, जिसका पुनर्विलोकन चाहा गया है, तो अनावेदिका ने उसी कॉलेज के प्राचार्य का एक प्रमाण पत्र दाखिल किया था जो वर्ष 1999 में जारी किया गया था, जिसमें प्राचार्य ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि अनावेदिका ने एलएलबी की प्रथम वर्ष की परीक्षा एक स्वाध्यायी छात्रा के रूप में दी थी, लेकिन उन्हें नियमित कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति दी गई थी और वास्तव में, उन्होंने नियमित कक्षाओं में भाग लिया था। अब, उक्त आदेश पारित होने के बाद 30 जुलाई 2005 की तारीख वाले प्रमाणपत्र अनुलग्नक–ए/1 और ए/2 प्राप्त हुए हैं। यह प्रकरण नहीं है कि जब अनावेदिका प्रथम वर्ष की एल.एल.बी. कक्षा में अध्ययनरत थी, उस समय प्रमाणपत्र दिनांक 30–07–2005 जारी करने वाला प्राचार्य ही उस समय प्राचार्य के पद पर नियुक्त था ऐसा प्रतीत होता है कि छात्रों के उपस्थिति रजिस्टर के आधार पर यह प्रमाण पत्र जारी किया गया है यह स्वाभाविक ही है कि जब अनावेदिका नियमित छात्रा नहीं थी, तो नियमित छात्रों की उपस्थिति रजिस्टर में उसकी उपस्थिति कैसे दर्ज की जा सकती थी। ऐसा नहीं है कि तत्कालीन प्राचार्य द्वारा 2–6–99 को जारी किया गया पूर्व प्रमाण पत्र जाली था। उस प्रमाण पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि अनावेदिका एक स्वाध्यायी छात्रा थी, यद्यपि ,

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

उसे नियमित रूप से कक्षाओं में भाग लेने की अनुमति दी गई थी, इसलिए, वह प्रमाणपत्र अभी भी मान्य है इसलिए, प्रमाणपत्र अनुलग्नक– ए/1 और ए/2 के बाद भी तथ्यों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तव में, आवेदक उसी बात को फिर से उठाना चाहता है जिस पर उचित विचार और विमर्श के बाद पहले ही निर्णय लिया जा चुका है।

7. आदेश के पुनर्विलोकन के लिए आवश्यक दूसरा बिन्दु यह है कि पुनर्विलोकन चाहने वाला पक्ष उचित परिश्रम के बाद भी प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने की स्थिति में नहीं था या उसकी जानकारी में नहीं था पुनर्विलोकन याचिका में व्य.प्र.संहिता के आदेश 47 नियम 1 में निर्धारित शर्त के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है कि आवेदक को उचित परिश्रम के बाद भी जानकारी नहीं थी और वह प्रमाण पत्र प्रस्तुत कर सकता था इसलिए यह शर्त पूरी नहीं हुई है। इसके अलावा आक्षेपित आदेश पारित करके इस न्यायालय ने अभिलेख पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली कोई त्रुटि नहीं की है क्योंकि इसे इस तथ्य पर विचार करने के बाद पारित किया गया था कि अनावेदिका को उक्त पाठ्यक्रम में उपस्थित होने की अनुमति दी गई थी। वास्तव में उसने नियमित रूप से कक्षाओं में उपस्थित हुई था भले ही वह प्राइवेट छात्रा थी और साथ ही अधिवक्ता अधिनियम की धारा 24 के सुसंगत प्रावधानों के साथ बार काउसिंल ऑफ इंडिया रूल्स के नियम 1 (1) (ग) (खण्ड–बी) पर भी विचार की थी यदि अब आवेदक द्वारा उठाए गए बिंदु पर विचार किया जाता है तो यह उस प्रकरण की पुनः सुनवाई के समतुल्य होगा जिसमें विधिक बिंदुओं का निर्णय इस न्यायालय द्वारा पहले ही आवेदक के विद्वान अधिवक्ता को समुचित अवसर प्रदान कर सुनवाई के पश्चात निर्णय दिया जा चुका है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

8 फलस्वरूप यह याचिका सारहीन पाई जाती है अतः यह खारिज किए जाने योग्य है और इसे एतदद्वारा प्रारंभ से ही खारिज किया जाता है। तथापि वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।

हस्ताक्षर/–
एल.सी. भादू
न्यायाधीश

अस्वीकरण – हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित उपयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सके एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु उपयोग में नहीं किया जाएगा। **समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का हिन्दी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता की जावेगी ।**

Translated by : अजय कुमार अग्निहोत्री अधिवक्ता

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur